



## संगीत एवं समाज

विभूति मलिक  
शोधार्थी  
बी.यू. भोपाल



मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिये संगीत भी मनुष्य से जुड़ा होने के कारण समाज में अपना एक विशेष स्थान रखता है। मनुष्य सृष्टि के अंगभूत तत्त्व के रूप में सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुआ। यही कारण है कि जन्म-मरण की परिधि में बँधा मनुष्य सृष्टि से ही संस्कार बटोरकर उत्पन्न हुआ। उसने आँखों से देखा, कानों से सुना तथा इन्द्रियों से अनुभव किया और उसमें संस्कार बन गये। इसी कारण मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी (Thinking animal) बना और फिर वाचक प्राणी (Talkative animal) बना और इन्हीं दो कारणों से वह सामाजिक प्राणी (Social Animal) बना।

कलायें मनुष्य की जन्मजात सहचरी हैं, इसी कारण संगीत समाज –सापेक्षता (Social relativity) की कला बन गया। यह सर्वविदित है कि समाज व संगीत का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। संगीत के व्यापक क्षेत्र को देखने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक काल में संगीत ने समाज को प्रभावित किया है या समाज से संगीत प्रभावित रहा है। संगीत का अपना एक अनूठा स्वरूप है जो समाज को प्रभावित करने में सक्षम है। संसार में मनुष्य जो कुछ करता है, सुख पाने की लालसा से करता है। सुख की वृद्धि के लिए ही समाज बनता है। जब व्यक्ति अकेले सुख प्राप्त करने में असमर्थ होता है, तब उसे समाज की शरण लेना पड़ती है। समाज से उसे बल मिलता है, समाज की शक्ति उसे अधिक सुख की प्राप्ति कराने में सहायक होती है। मनुष्य बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक समाज पर आश्रित रहता है। वह जो कुछ सीखता है, अनुभव करता है या प्राप्त करता है, उसका आधार समाज ही होता है। व्यक्ति समाज का एक अंग है, जो समाज के द्वारा पोषित होता है। व्यक्ति का जो स्वरूप बनता है, वह उसका अपना रूप नहीं है और अगर है तो बहुत थोड़ा-सा, अधिकतर समाज का ही दिया हुआ रूप होता है। समाज यदि जननी है तो व्यक्ति उसका बालक।

मनुष्य की अभिव्यक्ति में संगीत-रचना अति प्राचीन है। बालक पैदा होते ही मुँह से स्वर निकालता है और मुद्राएँ बनाता है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए और इसमें सफलता भी पाता है। परन्तु इससे वह आरम्भ में साफ-साफ अपनी सब इच्छाओं को व्यक्त नहीं कर पाता। जैसे-जैसे बालक बढ़ता है वह इशारों, मुद्राओं तथा स्वरों और शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करता जाता है। जब बालक पैदा होता है, तब वह उस समय वह कोई भाषा नहीं बोलता, उसे किसी भाषा का ज्ञान नहीं होता, वह सिर्फ रोता है। स्वर का ज्ञान उसे नहीं होता। रोना-हँसना भी तो संगीत की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। बालक रोने व हँसने के द्वारा ही अपनी रूढ़ता एवं प्रफुल्लता को प्रकट करता है। पूर्व पाषाण काल के मनुष्यों का गाना भी स्वरों पर ही आधारित था। जब किसी शिकार को यह लोग मार लिया करते थे तो यह लोग स्वर के टेढ़े-मेढ़े आलाप भरकर अपने आनन्द की अभिव्यक्ति करते थे। इनके गाने में कोई शब्द नहीं होता था क्योंकि भाषा का जन्म इस युग में नहीं हो पाया था।

उत्तर पाषाण काल में लोगों में सामाजिक भावना उदय हो चुकी है इसलिए सामूहिक संगीत का जन्म इस युग में हो गया था। यह लोग युद्ध में भी संगीत का प्रयोग करने लग गये थे। महिलायें काम करते वक्त एक प्रकार का मीठा स्वर निकालती थीं, और इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी काम करते वक्त अपने स्वर का आलाप विभिन्न ढँग से करते थे। वेद ने भी संगीत के महत्त्व को स्वीकारा और एकता में सहायक माना है। ऋग्वेद की ऋचाओं को स्वर युक्त करके एक वेद का निर्माण कर उसे "सामवेद" नाम दे दिया। वैदिक कालीन समाज के सामाजिक संगठन का मूलाधार परिवार था। प्रत्येक परिवार में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था। इस काल में समाज में सार्वजनिक रूप से संगीत के प्रदर्शन होते थे। इस काल में ग्रामों की व्यवस्था हो चुकी थी, अतएव संगीत कई वर्गों में बँट गया था। शास्त्र की रचना का काम वर्ग-विभक्त समाज में सदैव उच्च वर्ग के हाथों में रहा।

शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे ने अपनी पुस्तक में लिखा है – "सामवेद भारतीय संगीत कला का प्राचीनतम निदर्शन है। इसका स्रोत तत्कालीन लोकसंगीत ही रहा है। तथापि यज्ञयाग जैसे धार्मिक समारोहों से तथा समाज के उच्च वर्ग से संबंध होने के कारण उसमें संस्कार तथा नियमबद्धता की मात्रा बढ़ गई और उसे शिष्ट सम्मत मार्ग-संगीत का स्वरूप प्राप्त हुआ।"



# INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH —GRANTHAALAYAH

A knowledge Repository



वैदिक साहित्य में साम् संगीत के अतिरिक्त कुछ अन्य के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिन्हें सामगायन के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार के गायन के अन्तर्गत गाथा, नाराशंसी, आदि का उल्लेख आता है, जो प्रशस्ति गायन के अनुरूप थे। ऋग्वेद के दशम मंडल में एक उल्लेख आता है कि जहाँ गाथा एवं नाराशंसी के एक-एक अंग के रूप में प्रयोग हुआ है। वैदिक काल में संगीत की स्पष्ट दो धाराएँ प्रचलित थीं। प्रथम साम् संगीत और द्वितीय सामेत्तर संगीत। साम् गायन पूर्णतः धार्मिक होता था। उसकी विषयवस्तु संबंधी ऋचाएँ थीं, जबकि सामेत्तर संगीत की विषय वस्तु सामान्यतः प्रशस्तियाँ प्रतीत होती हैं। वैदिक कालीन समाज में एक वर-वधू महोत्सव होता था, जो 'समन' कहलाता था। 'समन' एक प्रकार का सांगीतिक मेला था, जहाँ आमोद के लिए नारियाँ जाती थीं। 'समन' ने समाज के अन्दर संगीतमय वातावरण को खूब फैलाया। 'समन' के अन्दर नारियाँ कई प्रकार के नृत्य प्रदर्शित किया करती थीं, पुरुष वर्ग कण्ठ संगीत का सुन्दर ढँग से प्रदर्शन करते थे।

पौराणिक काल में समाज के अन्दर संगीत की स्थिति आदरणीय थी। यद्यपि इस काल में समाज के अन्दर उच्छृंखलता बढ़ती जा रही थी, लेकिन फिर भी समाज के अंदर संगीतकारों का जीवन सन्तुलित रूप से ही था। वैदिक कालीन सामाजिक उत्सव 'समन' ने इस काल में 'समज्जा' का रूप ले लिया था। 'भाष्य' में कहा गया है कि, जिसमें जन-समुदाय इकट्ठा हो वह उत्सव 'समज्जा' कहलाता था। इसे समाज भी कहा जाता था। अशोक के अभिलेखों में 'समाज' नामक उत्सव का ही उल्लेख है। महाभारत काल में संगीत को समाज में पर्याप्त सम्मानित स्थान प्राप्त था। लौकिक संगीत की अपेक्षा सामगान की महत्ता अधिक समझी गई थी, क्योंकि यह धार्मिक संगीत था।

रामायण काल में संगीत जीवन का अभिन्न अंग था। राजा, प्रजा, नर, नारी, वानर, राक्षस आदि सभी वर्गों में संगीत का प्रचार था। उत्सव एवं समारोहों का ही नहीं वरन् नागरिकों के दैनिक जीवन का भी यह अभिन्न अंग था। इस काल में संगीतकारों के अन्तर्गत संगीत विधा के वे ज्ञाता आते हैं जो — व्यवहार एवं सिद्धान्त — दोनों क्षेत्रों में कुशल हों। लव-कुश के गुरु आचार्य वाल्मीकि ही थे। इन दोनों ही गुरु-शिष्यों को समाज सम्मान की दृष्टि से देखता था। ये शास्त्रीय संगीत या गान्धर्व-संगीत को प्रस्तुत करते थे। समाज में गायक, वादक, नर्तकों का एक अन्य वर्ग भी था, जिन्हें यज्ञ, मनोरंजक कृत्य एवं समाज तथा गोष्ठियों में आमन्त्रित किया जाता था। राजा दशरथ ने इन्हें पुत्र-प्राप्ति के अवसर पर यज्ञ में आमन्त्रित किया था। उपर्युक्त प्रमाणों के प्रकाश में रामायण में संगीतकारों की स्थिति सम्माननीय मानी जा सकती है। बौद्धकाल में समाज में संगीत का विपुल प्रचार था। इसका प्रमाण संगीत संबंधी उत्सवों के उल्लेख हैं जहाँ नृत्य-गीत-वादन होता था। 'समज्जा' ऐसा ही उत्सव था। समाज में संगीत के विभिन्न उपयोग भी ज्ञात थे। जैन ग्रन्थों में संगीत-संबंधी उल्लेखों से यह ज्ञात हो जाता है कि समाज में संगीत का अत्याधिक प्रचार हो गया था। मनोरंजन का यह प्रधान अंग बन चुका था। यही कारण था कि समाज ने जैन भिक्षुओं के लिए संगीत को निषिद्ध माना था। इस निषेध से संगीत की समाज में हेयता का अनुमान नहीं लगाना चाहिये क्योंकि इस अवस्था में निषिद्ध होने पर भी अन्य अवस्थाओं में इसका प्रयोग मान्य था। महावीर की स्तुति भी गीत-वाद्य के साथ की जाती थी। इसके अतिरिक्त संगीत संबंधी उत्सव भी होते थे, जहाँ जनता का मनोरंजन विविध साधनों के साथ ही गायन, वादन एवं नृत्य के भी माध्यम से किया जाता था।

**भरत का नाट्यशास्त्र** संगीत के सामाजिक पक्ष पर प्रकाश नहीं डालता क्योंकि यह 'नाट्यकला' से संबंधित ग्रन्थ है। किन्तु इस ग्रन्थ के अध्ययन से अन्ततोगत्वा यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि संगीत का समाज में इतना अधिक प्रचार बढ़ गया था कि भरत ने भी इसका उल्लेख अपने ग्रन्थ में यथास्थान किया है।

'संगीत' किसी भी युग में समाज से अलग नहीं रहा। ये तो समाज का सहचरी रहा है। युग परिवर्तन में इसका स्थान अवश्य कम-ज्यादा होता रहा। किसी युग में इसे ज्यादा महत्व मिला, तो किसी युग में कम। कम महत्व में भी यह आवश्यक ही रहा। फिर चाहे पाषाण काल हो, पूर्व काल या उत्तर। वैदिक काल, महाभारत काल, रामायण काल, बौद्ध काल और जैन आदि काल। प्रत्येक युग अपने आप में संगीत की एक समृद्ध परम्परा लिये हुये हैं। संगीत और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं।

### संदर्भ —

1. शर्मा, डॉ. सत्यवती, 'संगीत का समाजशास्त्र', पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. तोमर, अवधेश प्रताप सिंह, 'संगीतशास्त्र सुरसरी', रागी पब्लिकेशन, सागर
3. शर्मा, डॉ. शिवदीपक, 'आलेख-संकलन', दर्शनशास्त्र विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरनगर